हज (तीर्थ यात्रा)

लेखकः आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
अनुवादकः जनाब मिर्ज़ा सज्जाद हुसैन

हज को इस्लामी इबादतों में विशेष स्थान प्राप्त है। पवित्र क़ुरान में हज न करने वाले को काफ़िर बतलाया गया है। क़ुरान का आदेश है "अल्लाह के प्रति मनुष्यों पर काबे शरीफ़ का हज अनिवार्य है, उस व्यक्ति पर जो वहाँ तक जाने की सामर्थ्य रखता हो और काफ़िर (अधर्मी) को ज्ञात होना चाहिए कि अल्लाह को किसी की आवश्यकता नहीं" अर्थात हज न करके वह दुष्कर्म करेगा, पाप का भोगी होगा तो स्वयं होगा। अल्लाह की कोई हानि नहीं होगी।

हज का एतिहासिक आरम्भ

हज करने का आदेश हज़रत मुहम्मद[स०] के समय में ही नहीं आया, अपितु इसको अति प्राचीन ऐतिहासिक महत्व प्राप्त है अर्थात हज़रत इब्राहीम[अ०] जब अपने सुपुत्र हज़रत इस्माईल[अ०] के साथ मक्के की भूमि पर काबे का निर्माण कर चुके तो उस समय क़ुरआन के इन शब्दों में ईश्वर का आदेश हुआ "तुम प्रत्येक स्थान पर हज की मनाही कर दो, जिस पर सब लोग तुम्हारी आवाज़ पर दौड़ पड़ेंगे, पैदल अथवा सवारियों पर, दूर-दूर के स्थानों से सब इस ओर आया करेंगे।"

हज़रत इब्राहीम के पश्चात् भी यह प्रथा प्रचलित रही यहाँ तक के अधर्मी (मुशरेकीन) भी हज करते थे निःसंदेह उन्होंने उसमें कुछ बुरी बातें सम्मिलित कर दीं थीं, जैसे नंगे होकर हज करना। हज़रत मुहम्मद[स०] ने केवल इन दोषपूर्ण प्रथाओं का अन्त कर दिया तथा हज को उसी प्रकार बाक़ी रखा।

हज क्या है?

हज का शाब्दिक अर्थ तो विचार करना (यत्न करना) है परन्तु इस्लाम धर्म के नियमानुसार एक मुस्लिम का एक विशेष समय पर हिजाज़ स्थान की भूमि मक्के पर ईश के प्रति उन विशेष कार्यों को पूर्ण करना है जिनका हज के अंशों स्तंभोदि में संक्षेप में वर्णन किया जायेगा।

हज किस लिए?

प्रत्येक भक्ति पूजा का वास्तविक अभिप्राय जनसाधारण को उस सर्वशक्तिमान अल्लाह के होने की भावना को बाक़ी रखना है जो संसार में सुधार, सत्यता तथा मानव में उच्च चरित्र तथा आचरण की संयता की एच्छिक है। उस ईश के होने की भावना मात्र से ही मनुष्य में विलासिता एश्वर्य एवं अभिमान की भावनाएं न उत्पन्न होने पायेंगी तथा वह जन समुदाय में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लेगा। क्योंकि मनुष्यों में काम भावनाऐं तथा दुष्ट विचार भी हुआ करते हैं। अतः ईश भक्ति के रूप में ही प्रत्येक मनुष्य को विभिन्न काम, भावनाओं का अन्त करने का तथा महान उद्देश्यों के हेतु कुछ संसारिक लाभों (धनादि) के बलिदान करने का अभ्यास कराया जाता है। कुछ भक्तियों में अपने आराम, सुख तथा शारीरिक सुखों का त्याग करना पड़ता है, जैसे नमाज़, कुछ में दुष्ट भावनाओं तथा विलासिता को त्यागना पड़ता है जैसे रोज़ा (व्रत)। कुछ में आर्थिक हानि सहन करनी पड़ती है जैसे ज़कात, ख़ुम्स (दानादि)।

हज पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो वे सब त्याग एवं बलिदान केवल हज में आ जाते हैं जो दूसरी भक्तियों के पृथक करने होने हैं। सुख एवं चैन का त्याग जो नमाज़ में होता है, हज में कहीं अधिक होता है। कहाँ थोड़ी देर के लिए खड़े रहना, बैठना, शीश नवाना और कहाँ हज में काबे को स्पर्श करने आदि के कार्य जिसमें नमाज़ भी एक है। फिर दूर दूर से आने वाले लोगों को तो यात्रा कठिनाईयों तथा यात्रा में भी जो अड़चने एवं बाधायें आती हैं उनका भी सामना करना पड़ता है।

दुष्ट इच्छाओं एवं भावनाओं का जो त्याग रोज़े मे करना पड़ता है उसमें तो केवल एक मास में प्रत्येक दिन केवल प्रातः से सांय तक होता है तथा हज में अहराम के पश्चात से हज की समाप्ति तक काफी समय तक उन सब बातों से वंचित करना पड़ता है जिनका त्यागना एहराम के पश्चात् अनिवार्य है, तथा आर्थिक त्याग जो ज़कात (दान आदि) में होता है, वह हज करने वाले जो दूर दूर से आते हैं उनको और अधिक सहन करना पड़ता है। इन सबसे श्रेष्ठ त्याग अधिकतर लोगों को हज करने जाने में स्वदेश-त्याग तथा मित्रों, सम्बन्धियों से भी अलग होना पड़ता है। इस प्रकार ये उन सब उद्देश्यों की पूर्ति का साधन है जो अन्य इबादतों में निहित है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण संसार के मुसलमानों का एक ही भूमि पर एकत्रित हो जाने से जो सामूहिक सुधार एवं एकता मुसलमानों की हो सकती है

वह विशेष वस्तु है।इसके अतिरिक्त हज में जिन कार्यों को किया जाता है उनमें से कुछ ऐसे हैं जो विशेष प्राचीन बातों की स्मृति के कारण हैं जिनको करने से धार्मिक भावनाओं का जागरण होता है।

हज की शर्तें

इस्लाम के नियमों ने मानव प्रकृति को छोड़ नहीं दिया है तथा असाधारण कष्टों एवं कठिनाईयों में मनुष्य को नहीं डाला है। अतः हज प्रथम तो आयु मे केवल एक बार अनिवार्य किया गया है। जब एक बार हज कर आये तो दूसरी बार हज करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं। हाँ पुण्य प्राप्ति के लिए अपनी इच्छा से प्रत्येक वर्ष हज करे तो भी सुन्दर है। इसके अतिरिक्त जो एक बार भी आयु में हज अनिवार्य होता है वह भी कुछ शर्तों के साथ। यदि उन शर्तों में कोई एक न हो सके तो भी हज अनिवार्य न होगा।

इनमें 2 शर्तें तो वह हैं जो प्रत्येक अनिवार्य में हैं अर्थात बालिग़ तथा बुद्धिमान। ये इस्लाम के क़ानून की अनिवार्य शर्तें हैं जिसके बिना कोई ज़िम्मेदारी नहीं होती। लड़की के लिए बालिग़ होने की आयु 9 वर्ष तथा लड़के लिए 15 वर्ष है तथा बुद्धि का माध्यम यह है कि पागल न समझा जाता हो। इसके अतिरिक्त हज के अनिवार्य होने में ये विशेष शर्त है कि सामर्थ्य रखता हो अर्थात मक्के तक पहुँचने तथा वहाँ से अपने घर तक जाने तथा यात्रा काल में अपने तथा अपने सम्बन्धियों के खाने पीने के लिए आवश्यक व्यय का धन पास मौजूद हो चाहे वह नक़दी रूप में हो अथवा ऐसा साधन जो संतोष जनक हो यदि ऐसा नहीं तो हज अनिवार्य न होगा।

यहाँ तक कि यदि कोई मनुष्य निर्धन है मगर धनी उसे अपने पास से ले जाये और उसके सम्बन्धियों के खान पान के लिए तैयार हो तो भी हज के लिए दूसरे से लेना अनिवार्य नहीं है बल्कि उसे चाहिए कि वह इन्कार कर दे और कहे जब अल्लाह स्वयं मुझको देगा उस समय हज करूँगा, इस प्रकार मैं हज करना नहीं चाहता। हाँ यदि किसी धनी ने इतनी रक़म दे दी कि जो हज के लिए काफ़ी है तथा निर्धन ने वह रक़म ले भी ली तो उस पर हज करना अनिवार्य हो जायेगा। अब यह उचित नहीं है कि उस धन को वह अन्य कार्यों में लगा दे तथा हज के लिए प्रतिज्ञा करे कि जब अपने पास निजी धन होगा तब हज को जाऊँगा। यदि ऐसा करेगा तो हज उसके लिए करना अनिवार्य बना रहेगा और वह मनुष्य इसके न करने का स्थायी रूप से पापी (पाप-भोगी) बना रहेगा। फिर हज के लिए यह भी आवश्यक है कि उसका (हज करने वाले) शारीरिक स्वास्थ्य भी ऐसा हो कि वह यात्रा कष्टों को सहन कर सके तथा मार्ग शांतिपूर्ण हो। धनव प्राणादि का कोई भय न हो।

हज के प्रकार

हज तीन प्रकार का होता हैः-

(1) हज्जे अफ़राद, (2) हज्जे क़िआन (3) हज्जे तमत्तो।

पहले २ प्रकार के हज उन लोगों के लिए है जो विशेष मक्का में या मक्के से 48 मील के अन्दर रहते हैं और हज्जे तमत्तो उनके लिए है जिनके निवास स्थान 48 मील या उससे अधिक दूर हैं।

इन प्रकारों का अन्तर

हज्जे तमत्तो में 2 बार एहराम बांधा जाता है एक बार उमरा के लिए और इसके बाद तवाफ़े काबा ओर सफ़ा-ओ-मरवा के बीच दौड़ना, बाल और नाख़ून काटना होता है तथा इसके पश्चात् एहराम के प्रतिबन्ध समाप्त, यहाँ तक कि तवाफ़ुन्निसा के बाद स्त्री सम्भोग न करने का प्रतिबन्ध भी हट जाता है। इसके बाद फिर हज का एहराम बाँधा जाता है और इस एहराम के बाद अरफ़ात में वुक़ूफ़ तथा मशअ़रल हराम में जाकर ठहरना और मिना में पशु बलिदान तथा सर मुडंवाना या बाल कुतरवाना और फिर काबे के तवाफ़ (स्पर्श) के पश्चात् सफ़ा-ओ-मरवा के बीच सई तत्पश्चात् तवाफ़ुन्निसा और अन्त में मिना में ठहरना और रम्ये जमरात होता है।

परन्तु हज्जे क़िरान और इफ़राद में केवल एक ही एहराम बाँधा जाता है। इस एहराम को बाँधकर अरफ़ात में वुक़ूफ़ आदि कार्य जो वर्णन किए गये हैं किये जाते हैं। पूर्व वाले कार्य जो उमरा के एहराम के साथ वहाँ किये जाते थे यहाँ नहीं किये जाते हैं।

क़िरआन और अफ़राद दोनों के रूप बिलकुल समान हैं, केवल इतना अन्तर है कि क़िरान में एहराम के साथ ही अपने साथ बलिदान (भेंट) किये जाने वाले पशु ले जाना होते हैं और इफ़राद में इसकी आवश्यकता नहीं होती।

हज्जे तमत्तो पर दृष्टि

जब क़ुरआन में सूए-ए-बक़रह मौजूद है तो इसके पश्चात् कोई कारण नहीं है कि मुसलमानों के बीच हज्जे तमत्तो में कोई विरोध हो। परन्तु शोक है कि विरोध हुआ और वह इस प्रकार कि हज़रत मुहम्मद[स०] के बाद कुछ ख़लीफ़ाओं ने उसे नापसन्द किया और उसका विरोध किया। अतः सुन्नी इसी बात पर अड़ गये। यद्यपि क़ुरआन और हज़रत मुहम्मद[स०] की सुन्नत (कार्य) के सामने किसी मनुष्य की मंत्रणा का कोई मूल्य

नहीं है। अतः सही बुख़ारी में स्पष्ट लिखा है:- "इससे स्पष्ट है कि इस्लाम में तीन प्रकार के हज मौजूद थे।"

इस विषय में दो हदीसें लिखी हैं जिनका वर्णन यह है कि तीसरे ख़लीफ़ा उस्मान की ओर से हज्जे तमत्तो पर नियन्त्रण लगाया गया तो हज़रत अली[अ०] ने कहा जिसके शब्द एक हदीस में ये हैं "मैं किसी के कथन के कारण हज़रत मुहम्मद[स०] की सुन्नत को त्याग नहीं सकता।" दूसरी हदीस में है कि आपने स्वयं उस्मान से कहा "आख़िर तुम्हारा क्या अभिप्राय है कि तुम उस चीज़ से रोक रहे हो जिसे स्वयं हज़रत मुहम्मद[स०] ने किया।" (सही बुख़ारी प्रकाशन मिस्र जिल्द 1 पृष्ठ 175) इसी प्रकार अन्य धार्मिक पुस्तकों में भी अनेकों प्रमाण दिये हुए हैं जिनके बाद किसी मुसलमान को इस विषय में इन्कार करने का प्रश्न शेष नहीं रहता।

हज के कार्य

मक्के के बाहर से आने वालों के लिए एक स्थान प्रत्येक ओर निश्चित है जहाँ से वह हज के वस्त्र धारण करते हैं और विशेष प्रकार से हज का विचारकर कुछ प्रतिबन्ध अपने ऊपर लागू करते हैं जिसे एहराम बांधना कहते हैं। इस स्थान को "मीक़ात" कहा जाता है।

भारतवर्ष से जाने वालों के लिए मीक़ात एक स्थान है जिसका नाम "यलमलम" है। बग़ैर एहराम बांधे मीक़ात से मक्के की ओर बढ़ना महान पाप (हराम) है। यदि समुन्द्र की ओर से जद्दा जाने में स्वयं यलमलम पहुँचना नहीं होता अतः जद्दा में पहुँचकर एहराम बाँधा जा सकता है। इस प्रकार हज्जे तमत्तो जो दूर वालों के लिए अनिवार्य है उसमे निम्न कार्य करने पड़ते हैं।

1. उमर-ए-तमत्तोह का एहराम

नीयम या मनन में अर्थात मन में यह विचार करे कि मैं उमरा-ए-तमत्तोह का जो अनिवार्य है इस्लाम की नियम पूर्ति के लिए एहराम बाँधता हूँ अल्लाह के लिए।

यह वैसा ही मनन (नीयत) है जैसी नमाज़ आदि में अनिवार्य है। जिसका अभिप्राय है कि यह कार्य मैने पूर्ण विचार करके किया है तथा उसमें ईश आदेश के पालन की भावना विद्यमान हो। केवल मनुष्यों को दिखाने या किसी निम्न उद्देश्य को सामने रखकर इस कार्य को पूरा न किया जाये वरन् वह कार्य अशुद्ध होगा अर्थात उसके द्वारा जो कार्य करना उस पर अनिवार्य था पूरा न होगा।

उपरोक्त विचार के बाद तलबिया कहे अर्थात "लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक ला शरीक लक लब्बैक" अर्थ है उपस्थित हूँ, अल्लाह जगपालक उपस्थित हूँ, कोई भी तेरा शरीक नहीं (तू केवल अकेला है), तेरे धाम में उपस्थित हूँ। ज्ञात होता है जैसे अल्लाह की ओर से पुकारा जा रहा है तथा ये उस पुकार पर अपने मित्रों सम्बन्धियों तथा देश को छोड़ कर रवाना हुआ है। इन शब्दों के साथ यदि वास्तविकता का ध्यान आ जाये तो यही मानव के जीवन में महान परिवर्तन एवं पूर्ण मानवता एवं सत्यता का संचार करा सकता है। यथाकारण हमारे चौथे इमाम हज़रत ज़ैनुल आब्दीन[अ०] की एक कथा है कि आपने एक बार "अल्लाहुम्मा लब्बैक ला शरीक लक लब्बैक" की आवाज़ दी जो यकायक मूर्छित होकर ऊँट से नीचे गिर पड़ें जब मूर्छा दूर हुई तो कहा मुझे ध्यान आया कि मैं उस ईश-धाम में उपस्थित होने योग्य भी हूँ। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैने कहा "लब्बैक" उपस्थित हो रहा हूँ और उधर से आवाज़ आई "ला लब्बैक" अर्थात हमें तेरा आना स्वीकार नहीं है। इस तलबिया के बाद कपड़े एहराम के पहने एक धोती के रूप में बाँधे और दूसरे को चादर के रूप में कंधों पर डाल ले। दोनों कपड़े सिले हुए या बनयाईन की तरह बने हुए न हो न रेशम आदि के हों।

स्पष्ट है कि इस प्रकार के बड़े-बड़े धनाढ्य व्यक्तियो और सुन्दर वस्त्रधारी व्यक्तियों को भी इस सरलता एवं सादगी में होने पर बाध्य किया गया है जिसके बाद उनमें और दरिद्रों में कोई अन्तर न रह जाये। ये समानता उत्पन्न करने के वह कार्य हैं जिसे इस्लाम ने अपने नियमों मे बराबर स्थान दिया है।

निःसंदेह स्त्रियों हेतु उनके पर्दे के कारण यह विशेष बात रखी गयी है कि वह सिला हुआ कपड़ा पहन सकती हैं। इससे इस्लामी नियमों में पर्दे के महत्व का ज्ञान होता है जो दूसरे नियमों में भी बहुधा परिवर्तनका कारण बन जाता है।

उपरोक्त विधि से एहराम बाँधने के पश्चात् निम्नलिखित कार्य उस व्यक्ति पर हराम (न करने वाली) हो जाते हैं:-

1. स्वयं शिकर करना अथवा दूसरे को पता बताना, शिकार के हथियारों को देना या किसी दूसरे प्रकार से शिकार में सहायता करना।
2. विवाह करना।
3. विवाह का गवाह होना या गवाही देना।
4. सुगंध सूँघना।
5. किसी दुर्गन्ध से नाक बन्द करना।
6. तेल लगाना।
7. सिले या बिने हुए वस्त्र पहनना।
8. ऐसे जूते या मोज़े पहनना जिनसे पैर की पीठ छिप जाये।
9. श्रृंगार की दृष्टि से अंगूठी पहनना।
10. पुरुष को सर और कानों का ढाँकना या पानी में ग़ोता लगाना या सर को डुबोना।

11. पुरुष को यात्रा (आने जाने) की दशा में छतरी या वृक्ष के छाये में चलना।
12. सर या बदन से बाल उखाड़ना।
13. नाख़ून काटना चाहे एक ही उंगली का हो।
14. जूँ आदि का मारना या शरीर से अलग करना।
15. श्रृंगार की दृष्टि से काला या लाल अंजन लगाना।
16. श्रृंगार के लिए मेंहदी लगाना।
17. दर्पण (आईना) देखना।
18. दाँत या दाढ़ उखड़वाना।
19. बिना भय के हथियार लगाना या अपने पास रखना।
20. शरीर से रक्त निकालना या निकलवाना।
21. झगड़े के अवसर पर "ला वल्लाह" या "बिल वल्लाह" की सौगन्द खाना।
22. स्त्री को श्रृंगार की दृष्टि से आभूषण पहनना।
23. किसी व्यक्ति को यहाँ तक कि अपने पति को अपना श्रृंगार दिखाना।
24. स्त्री को बिना किसी पुरुष से अपने मुख पर धूप आदि के कारण नकाब डालना।
25. स्त्री को दस्ताने पहनना।
26. स्त्री-पुरुष सभी को प्रत्येक के लिए झूठ बोलना, गवाही देना या किसी पाप को करना।
27. हरम की घांस या वृक्ष को तोड़ना या काटना।

उपरोक्त प्रतिबन्धों पर दृष्टिपात करने मात्र से ही इस बात का ज्ञान होता है कि इस एहराम के बाद एक निश्चित समय तक मनुष्य को कितने कठिन प्रकार से भावनाओं, कामनाओं एवं इच्छाओं पर नियन्त्रण करने का पाठ पढ़ाया जाता है जो इसमें सफल हुआ उसे कितना मानवीय इच्छाओं पर क़ाबू प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। से स्वयं सिद्ध है।

एहराम के बाद हरम तथा मस्जिद में प्रवेश करे तथा पुनः वज़ू के बाद उमर-ए-तमत्तोह के तवाफ़ के विचार से सात बार काबे के गिर्द (चारों ओर) फिरना अनिवार्य है। इसके पश्चात् मक़ामे इब्राहीम में 2 रकात नमाज़ पढ़े। इसके बाद सफ़ा और मरवा के बीच 7 बार सई "दौड़" करे फिर तक़सीर करे अर्थात बाल नाख़ून आदि कटवाये जिसके बाद उमर-ए-तमत्तोह पूरा हो जाता है और बहुत सी बातें जो एहराम की दशा में मना थीं अब कर सकते हैं उदाहरणार्थ अब साधारण वस्त्र धारण कर सकते हैं। स्त्री से संभोग भी उचित है। तवाफ़ुन्निसा के बाद परन्तु शिकार आदि जो हरम के आदर, सत्कार के कारण हैं अब भी मना रहते हैं तथा हज करने से पहले हरम से बाहर निकलना भी ठीक नहीं। इसके बाद ८वीं ज़िलहिज से दुबारा एहराम बाँधा जाता है यह एहराम पवित्र मक्का में ही बाँधा जाता है। शेष आदेश इस एहराम के वही हैं जिनका एहरामे उमरा मे वर्णन हो चुका है।

अब एहराम बांधने के बाद अरफ़ात जाये और वहाँ वक़ूफ़ करे अर्थात सूर्य अस्त होने के समय से शाम तक वहाँ ठहरा रहे। शाम को नमाज़े मग़रिबैन पढ़ने के बाद अरफ़ात से मशअरल हराम को जाये तथा सूर्योदय पश्चात् मशअ़रल हराम से मिना जाये और ईदुज़्ज़ुहा के दिन जुमर-ए-अक़बा पर 7 कंकड़ियाँ एक एक करके मारे यह कंकड़ियाँ हरम की भूमि से उठायी जाती हैं और इस तरह मारी जाती हैं कि सुतून पर जाकर गिरें। इसके पश्चात् यहीं मिना में ऊँट, गाय, बकरी, दुम्बा मे से एक पशु की क़ुरबानी की जाती है।

क़ुरबानी के पश्चात् ऐसे व्यक्ति को जो पहले पहल हज को गया हो यह अनिवार्य है कि उसी दिन सर मुँडवाये और स्त्रियाँ थोड़े से बाल कतरवा लें। इसी प्रकार पुरुष भी यदि पहली बार हज कर चुका है दुबारा गया है तो सर का मुँडवाना अनिवार्य नहीं है। कुतरवा लेना ही काफ़ी है। यह सब काम मिना में किये जायेंगे, जब पूरे हो जायेंगे तो जाकर काबे का तवाफ़ करे और 2 रकात नमाज़े तवाफ़ पढ़े जिसके पश्चात् सुगन्ध सूँघना ठीक है, पुनः सफ़ा व मरवा के बीच सई करे और अन्त में फिर तवाफ़ुन्निसा करे और 2 रकात नमाज़े तवाफ़ पढ़े जिसके बाद स्त्री संभोग उचित हो जाता है।

इसके पश्चात् ज़िलहिज की 11वीं अथवा 12वीं की रात्रि में मिना मे रहे तथा 11वीं तथा 12वीं को दिन में जुमर-ए-अवला, जुमर-ए-वस्ती, जुमर-ए-अक़बा तीनों पर क्रमशः 7–7 कंकड़ियाँ फेंकना अनिवार्य है जिसके पश्चात् हज पूर्ण हो जाता है। इसके बाद काबे से जाने के लिए पवित्र मक्के पलटना पुण्य कर्म (सुन्नत) है तथा फिर पवित्र मदीना जाकर हज़रत मुहम्मद[स०] के रौज़े की ज़्यारत (देखना) अत्याधिकर पुण्य कर्म है। जिसे करना अनिवार्य तो नहीं परन्तु आवश्यक (सुन्नते मुअक्क़दा) है जिसको यथासम्भव नहीं छोड़ना चाहिए। हज के पूर्व भी ज़्यारत को जाना ठीक है इस परिस्थिति में पहले यदि मक्के में प्रवेश करे तो उसके पूर्व एहराम-ए-उमर-ए- मुफ़रदा को बाँधना चाहिए इसलिए कि उमरा-ए-तमत्तोह के एहराम के बाद पुनः बना हज किये मक्के से निकलना उचित न होगा। मदीने की ज़्यारत (दर्शन) के बाद जब हज का अवसर निकट आये तो वहाँ से वापस आये और अब उस ओर जो मीक़ात है उससे उमरा-ए-तमत्तोह का एहराम बाँधे। इसके बाद उमरा और हज के कार्य पूर्वभूत होंगे।